आदिवासी संवेदनाओं की दास्तां: 'जंगल जहा शुरू होता है'

डॉ. संतोष तुकाराम बंडगर,
लाल बहादूर शास्त्री कॉलेज, सातारा
ईमेल santoshbandgar45@gmail.com
Mob. 09921990771

सारांश-

साहित्य समाज को नयी दशा व दिशा प्रदान करता है। दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों के शोषण का विरोध में सामाजिक, राजनीतिक के साथ साहित्यिक आंदोलन की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है। उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया में जल, जंगल एवं जमीन पर अतिक्रमण शुरू हुआ। इसी कारण आदिवासियों के अस्तित्व एवं अस्मिता के प्रश्न का जन्म हुआ। आदिवासी का संघर्ष और प्रतिरोध का फल ही आदिवासी साहित्य हिंदी साहित्य को मिली देन है। संजीव के कथा साहित्य में मध्य भारत की आदिवासी जनजीवन का चित्रण मिलता हैं। उनका 'जंगल जहाँ शुरू होता है' इस उपन्यास आदिवासी के भयावह सत्य को उजागर करता है। सामुहिकता, लोकतांत्रिकता, समानता, स्वतंत्रता यह सिर्फ लोकतंत्र में है। वास्तव में इसका फायदा आदिवासी को मिला नहीं। पूँजीपति वर्ग भोले-भाले आदिवासियों को अपने चंगुल में फँसाकर सब छीन लेते है। उन्हें शहरों में जाकर कारखानों में मजदूरी, विभागों में मजदूरी-दिहाड़ी करनी पड़ती हैं। इन सभी जगहों पर आदिवासियों की आय तो नहीं बढ़ी, लेकिन शोषण को जरूर बढ़ावा मिला। इसी भयानक वास्तविकता का चित्रण कथाकार संजीव ने जंगल जहा शुरू होता है।

कुंजी शब्द-

लोकतांत्रिकता, समानता, स्वतंत्रता, भूखमरी एवं अत्याचार, हक़दार, अस्तित्व एवं अस्मिता संथाल, थारू, मुण्डा, बोंडा, उराँव, जनजाति, चारागाह, पूजा स्थल

भूमिका-

समाज में प्रतिबिंबित घटनाओं को आधार बनाकर साहित्यकार साहित्य का नव सृजन करता है। इसके माध्यम से वह समाज को नयी दशा व दिशा प्रदान करता है। बीसवीं सदी के अंत में भारत में नए सामाजिक आंदोलन उभरकर सामने आए। दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों द्वारा नई एकजुटता के माध्यम से अपने प्रति शोषण का विरोध किया और संपूर्ण जनजाति की मुक्ति के लिए एक सामूहिक अभियान चलाया। सामाजिक, राजनीतिक के साथ साहित्यिक आंदोलन भी इस अभियान का मुख्य घटक था। दलित और स्त्री विमर्श इसी का परिणाम है। आदिवासी विमर्श भी दलित और स्त्री विमर्श की प्रेरणा की देन है।

1990 के बाद उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की तेज़ होती प्रक्रिया के साथ जिस तरह से आदिवासियों के जीवन में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हस्तक्षेप को बढ़ाया और इसके कारण उनके जल, जंगल एवं जमीन से सम्बंधित पारंपरिक अधिकारों का अतिक्रमण शुरू हुआ। आदिवासी क्षेत्रों में इसके खिलाप सामाजिक और साहित्यिक संघर्ष को तेज़ हुआ। इसी कारण आदिवासियों के अस्तित्व एवं अस्मिता के विकट प्रश्न को जन्म दिया। इसी बेचैनी ने आदिवासियों की अस्तित्व एवं अस्मिता की धारा ने आदिवासी विमर्श को जन्म दिया। परिणामस्वरूप हिंदी साहित्य में आदिवासियों की समस्याओं पर लेखन की दिशा में ने नया जन्म दिया। इसमें आदिवासी और गैर आदिवासी लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समकालीन हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श पर बहस और चर्चा हो रही है। आदिवासी विमर्श और आदिवासी साहित्य हिंदी साहित्य पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है। आदिवासियों के सालों के शोषण के बाद संघर्ष और प्रतिरोध का फल ही आदिवासी साहित्य हिंदी साहित्य को मिली देन है। आदिवासी समाज और साहित्य पर आह भी चर्चा हो रही है। लेकिन आदिवासी समाज और आदिवासी साहित्य का संघर्ष आज भी है। आज भी आदिवासी समाज समस्याओं से जूझ रहा है। इसका मुख्य कारण आदिवासी वर्ग समाज के मुख्य प्रवाह से अपरिचित रहा है।

हिंदी कथा-साहित्य में आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक स्थिति, रीति-रिवाजों, परंपराओं, कलाओं व प्रथाओं के साथ-साथ आदिवासी संस्कृति, दर्शन, जीवन शैली, प्रकृति और उनकी समस्याओं का सजीव चित्रण मिलता हैं। इसमें हिंदी कथाकार शीर्षस्थ हरिराम मीणा, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे, अनुज लुगून, ज्योति लकड़ा सुनील मिंज, जेवियर कुजूर, गंगा सहाय मीणा, केदार प्रसाद मीणा, निर्मला पुतुल, रमणिका गुप्ता, संजीव, निर्मला राकेश कुमार सिंह आदि साहित्यकारों हिंदी आदिवासी साहित्य महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संजीव के कथा साहित्य में मध्य भारत की संथाल, थारू, मुण्डा, बोंडा, उराँव, आदि जनजातियों का यथार्थ चित्रण हुआ है। संजीव अपने कथा साहित्य में आदिवासी समाज की समस्याओं, संघर्षों एवं सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के साथ उनमें

पाई जाने वाली रूढ़ परम्पराओं और अंधविश्वासों का निष्पक्ष रूप से वर्णन करते हैं। आजादी के बाद भी आदिवासी समाज, विस्थापन, भुखमरी, बेरोजगारी जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है। संजीव आदिवासी, वंचितों के प्रवक्ता रहे है। संजीव ने अपने लेखन के बारे में स्वयं कहा है, ''देश के लाखों, दलित, दमित, प्रताड़ित, अवहेलित जनों की जिजीविषा और संघर्ष का मैं ऋणी हूँ। जिन्होंने वर्ग, वर्ण, भाषा, सम्प्रदाय के तंग दायरों को तोड़ते हुए शोषकों, दलालों, कायरों के विरूद्ध मानवीय अस्मिता की लड़ाई लड़ी है और लड़ रहे हैं। मेरा लेखन उससे ऋण मुक्ति की छटपटाहट भर है''[1] समाज की विविध समस्याएँ ही संजीव की प्रेरणाएँ रही हैं। समाज व्याप्त विसंगतियों ने संजीव को लेखन के लिए उदीप्त किया है। समाज, देश और मनुष्यता के प्रति समर्पित हर शख्स उनकी सहानुभूति का पात्र है। संजीव के कथा साहित्य में आदिवासी समाज की रूढ़ परम्पराओं एवं अंधविश्वासों का भी निष्पक्ष रूप से वर्णन हुआ है।

संजीव का उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' जंगल में स्थित आदिवासी के भयावह सत्य को उजागर करता है। लोकतांत्रिक हिस्सा होने के बावजूद आदिवासी समाज को जंगल में जीवनयापन करने को मजबूर है। संघर्षमय की स्थितियों का सामना करना उनके जीवन का हिस्सा बन चुका है। संजीवजी का यह उपन्यास डाकू निमूलन की समस्या को लेकर उग्गार करता है। इस संदर्भ में गिरीश कशिद लिखते हैं, ''संजीव के उपन्यासों में व्यवस्थागत विसंगतियों के साथ पिछडे अंचलों बहुमुखी शोषण का भी विकराल रूप विद्यमान है। पूंजीपति व्यवस्था और नौकरशाही ने समय समय नए रूप धारण कर शोषण को बनाए रखा है। अंग्रेज तो चले गए लेकिन आजाद देश में नवअंग्रेज पैदा हुए हैं। ग्राम व पिछडे अंचलों में शोषण का मध्ययुगीन रूप कायम है बदला है तो शोषणतंत्र। संजीव के उपन्यासों में शोषण के विविध रूपों का चित्रण मिलता है।''[2] उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है।' में जंगल के विविध रूपों और अर्थ-छवियों का चित्रण मिलता है। थारू जनजाति, सामान्य जन, डाकू, पुलिस और प्रशासन, राजनीति, धर्म, समाज और व्यक्ति...और सबके पीछे से, सबके अन्दर से झाँकता, झहराता जंगल और जंगल को जीतने का दुर्निवार संकल्प।उपन्यास के केन्द्र में है 'मिनी चम्बल' के नाम से जाना जानेवाला पश्चिमी चम्पारण, जहाँ अपराध पहाड़ की तरह नंगा खड़ा है, जंगल की तरह फैला हुआ है।

उपन्यास की शुरुआत इस क्षेत्र के डी.एस.पी. कुमार से होती है जो इस क्षेत्र में डाकू उन्मूलन अभियान 'ऑपरेशन ब्लैक पाइथॅन' में डाकुओं के उन्मूलन के लिए आते हैं। यह प्रदेश 'मिनी चम्बल' के नाम से विख्यात पश्चिम चम्पारण को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। ऑपरेशन का मूल उद्देश्य डाकुओं की गिरफ़्तारी, अवैध हथियारों को सीज करना, जनता के खोए हुए विश्वास को फिर से बहाल करना है। पश्चिम चम्पारण बिहार राज्य का सबसे पश्चिम में एक जिला है जो पश्चिम में उत्तर प्रदेश के कुशीनगर और उत्तर में नेपाल से लगा हुआ है। जंगल जहाँ शुरू होता है उपन्यास का मुख्य उद्देश्य समाज में फैली भ्रांतियाँ, सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक, जनतांत्रिक समस्याओं के परिणाम स्वरूप डाकू बनने पर मजबूर हो जा रहे हैं या कष्टकारक जीवन जीने को मजबूर किसान का हैं। बिसराम अपनी लड़की के मर जाने पर विलाप करते हुए वहाँ की यथार्थ एवं दारुण स्थिति का वर्णन करता है, "हमार तो हर तरीका से मौवत लिखल बा, ए बेटी! जिमींदार से, डाकू से, देवता-पिता से भूत भवानी से पुलिस लेखपाल से, भूत-भवानी से, पुलिस-लेखपाल से..."[3] आदिवासी समाज शिक्षा का अभाव एवं संकुचित मानसिकता के गुलाम के कारण आज भी दुसरों की गुलामी करते आए है। उनकी मज़बूरी का फायदा इसी व्यवस्था ने उठाया है।

उपन्यास का कथानक बिसराम थारू, उसका छोटा भाई काली, बिसराम बहु, बेटियाँ छोटा सा परिवार लेकिन दुखी परिवार के इर्द गिर्द घुमती हैं। इस संदर्भ में संजीव लिखते है, "आदिवासी समाज के प्रति मीडिया और साहित्य के दो तरह के दृष्टिकोण है, एक तो आँख मूँदकर आह-वाह करना और दूसरा उन्हें सुधारने का बीड़ा उठाने वाली स्वयं शक्तियों का। मेरे शोध और अकादमिक बहसें इस विषय पर महत्त्वपूर्ण रही हैं। मैं अपनी उम्र के पाँच साल से लेकर दो हजार पाँच तक किसी न किसी रूप में आदिवासियों के बीच रहा हूँ। जितना उन्हें समझ पाया हूँ उन्हीं विचारों को मैं अपने साहित्य में स्थान देता हूं l"[4] सामाजिक असमानता के चलते थारुओं के जीवन में सुख हो या न हो, उनके जीवन का दुःख जरूर भागीदार है। बिसराम थारू इसी जनजाति का ही प्रतिनिधित्व करता है। डाकू, पुलिस के साथ ही साथ गाँव के अन्य सम्पन्न भी गरीब, असहाय आदिवासियों पर जुल्म करते रहते है। फेंकन अपने ही गाँव के सुन्नर पांडेय के घर काम करते थे। फेंकन जाति से दुसाध था। उसकी पत्नी बहुत सुंदर थी। वह कोइलरी में रहकर पढ़ी-लिखी थी। पड़ाइन उससे जलती थी। उन्होंने सुन्नर पांडेय के साथ मिलकर अपने भाई द्वारा उसपर बलात्कार करवाया। काली जब उन्हें सजा दिलवाने के लिए थाने जाता हैं। लेकिन उन्हें वहाँ से भगाया जाता है। डाकू सरगना परशुराम के पास उन्हें न्याय नहीं मिलता। उसे वहा से वापस लौटाया जाता है। इस संदर्भ में संजीव लिखते है,"लाचार फेकन थाने गया, मगर कुछ हुआ नहीं। फिर पता चला कि वह परशुराम यादव के पास गया था, जिसने उसे यह कहकर लौटा दिया कि वह चमारों, दूसाधों, धोबियों, कुम्हारों, लोहारों और नोनियाओं का केस नहीं लेता।"[5] गाँव के पंचों के पास जाता है। गाँव में पंचायत बैठती है। सबको बुलाया जाता है। परंतु वहाँ भी इनके साथ न्याय नहीं होता है और यह कहकर इन्हें ही दोषी करार दे दिया जाता है कि भला ऊँची

जाति का पुरुष नीच जाति के साथ बलात्कार कैसे कर सकता है। इसी घटना के कारण तथा भूखमरी एवं अत्याचार की असीमित पीड़ा को झेलता काली डाकू बनने की ओर अग्रसर होता है। क्रूर परिस्थितियाँ सच्चे ईमानदार काली को विपरीत दिशा में ले जाती है, तब वह हर उस पीड़ा का बदला लेता है।

थारू समाज के पिछड़ने का मुख्य कारणों में अंधविश्वास का स्थान अग्रणीय है। केवल थारू ही नहीं, यह पूरा क्षेत्र इसके गिरफ़्त में इस प्रकार फँस चुका है कि इसमें से निकलना मुश्किल है। मुरली पांडेय एक प्रतिष्ठित अध्यापक थे जो गाँधी जी से प्रेरित थे। ये समय-समय पर असहाय, गरीब आदिवासियों, दलितों के हक के लिए खड़े रहते थे। मुरली पांडेय लगातार कोशिश करते हैं पर वे भी असहाय हो जाते हैं। इन सब पिछड़ने के कारणों से काली भी दुखी है। वह अपने समाज की स्थिति को देखते हुए कहता है, "हम थारू वैसी ही कंगाल की जिंदगी जी रहे हैं- औरत भी, मर्द भी। इतिहास अगर कुछ रहा भी हो तो, सड़-गलकर बदबू दे रहा है। बदबू को ढकने के लिए हमने तरह-तरह के तरीके अपनाए-थारू गाय का दूध नहीं पीते, थारू हिरण का मांस नहीं खा सकते वगैरह-वगैरह, मगर लाज कि उघरती ही गई। अच्छा हुआ कि सरकार ने हमें ट्राइबल्स मान लिया।"[6] काली और उसका परिवार ही नहीं हजारो परिवार इस समस्या से पीड़ित है।

डी सी पी कुमार के द्वारा डाकू-उन्मू लन की दिशा में काली, परशुराम, को समर्पण के लिए प्रेरित करता है। काली के स्वभाव एवं परिस्थितियों से अवगत कुमार मानवीय धरातल आत्मसमर्पण के लिए तैयार कुमार प्रेरित करते हैं, लेकिन काली के अपने परिवार के दुर्देव्य स्थिति, समाज एवं प्रशासन की व्यवस्था से त्रस्त वह आत्मसमर्पण का रास्ता नहीं चुनता। क्योंकि जब उनका परिवार पीड़ित था तब काली के परिवार प्रशासन द्वारा न्याय मिलता तो वह डाकू बनने के लिए मजबूर नहीं होता। काली उस समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जो सदियों से शोषित एवं पीड़ित है। काली डकैती तो करता है, लेकिन विचारयुक्त हो सही-गलत के फर्क को समझता है।

सामुहिकता, लोकतांत्रिकता, समानता, स्वतंत्रता आदि ऐसे जीवन मूल्य जिनके आधार पर आदिवासी संस्कृति अपना अलग अस्तित्व रखती है। सामूहिकता भी आदिवासी संस्कृति की पहचान रही है। सारा गाँव, जंगल खेत, चारागाह, पूजा स्थल सबकी मिल्कियत होती है पर्व त्यौहार, नाचगान, गीत संगीत आदि का आनंद सामूहिकता में लेते हैं। भलेही संस्कृति के आधार पर आदिवासी समाज श्रेष्ठ हैं लेकिन वर्तमान परिस्थितियों को देखा जाए तो थारू समाज को वो सुविधा नहीं मिल पाती हैं, जिसके वे हक़दार हैं। आदिवासियों के ही जंगल जमीन, कोयला, खदान लेकिन इन पर ही इनका नाम मात्र का भी अधिकार नहीं है। पूँजीपति वर्ग भोले-भाले आदिवासियों को अपने चंगुल में फँसाकर सब कुछ छीन लेता है और बदले में सिर्फ तिरस्कार ही उन्हें मिलता है। शहरों में जाकर कारखानों में मजदूरी करने लगे, वन विभागों में मदूरी करने लगे। इन सभी जगहों पर आदिवासियों की आय तो नहीं बढ़ी, लेकिन शोषण को जरूर बढ़ावा मिला। इसी भयानक वास्तविकता का चित्रण वरिष्ठ कथाकार संजीव ने जंगल जहा शुरू होता है। इस उपन्यास में किया है।

निष्कर्ष-

वरिष्ठ कथाकार संजीव हिंदी साहित्य में वंचितों के प्रवक्ता रहें हैं उनकी लगभग सभी रचनाएँ आदिवासी, घुमंतू, वंचित, शोषित समाज की दशा एवं दिशा को वाणी प्रदान कराती है। जंगल जहा शुरू होता है उपन्यास में आदिवासी जनजाति को किसी प्रकार इसी समाजव्यवस्था ने गैरकानूनी मार्ग अपनाने को मजबूर किया है। डाकू, पुलिस के साथ ही साथ गाँव के अन्य सम्पन्न भी गरीब, असहाय आदिवासियों पर जुल्म करते रहते है। फेंकन की सुंदर पत्नी थी जो कोइलरी में रहकर पढ़ी-लिखी थी उसपर बलात्कार होता है। काली जब काली जब बलात्कारी को सजा दिलवाने के लिए थाने जाता हैं। लेकिन उन्हें वहाँ से भगाया जाता है। डाकू सरगना परशुराम के पास भी उन्हें न्याय नहीं मिलता। तब वह खुद डाकू बनता है। आदिवासी जंगल जमीन, कोयला, खदान के मालिक है लेकिन इन पर ही इनका नाम मात्र का भी अधिकार नहीं है। पूँजीपति वर्ग आदिवासियों को अपने चंगुल में फँसाकर सब छीन लेते है। आदिवासी वर्ग को अपनी रोजी-रोटी के लिए विस्थापन, लूटमार, डकैती आदि गैरकानूनी मार्ग अपनाना पडता है।

कोई अपने भूख मिटने के लिए, अन्याय का बदला लेने के लिए तो कोई तो कोई अपनी सामाजिक-आर्थिक स्थैर्य के लिए यह मार्ग अपनाता है लेकिन हमारी व्यवस्था सबसे ज्यादा लोगों को मजबूरन इस मार्ग अपनाने के लिए बाध्य करते

संदर्भ-

1. संजीव, संजीव की कथा यात्रा: पहला पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2008 पृ. 10
2. गिरीश काशिदः कथाकार सजीव, शिल्पायन प्रकाशन 2008, पृ. 255
3. संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, दूसरी आवृति 2015, राधाकृष्ण पेपर बैक्स, दिल्ली, पृ. 21
4. संजीव,संजीव के नजरों में आदिवासी समाज, भारतीय साहित्य और आदिवासी समाज, संपा. माधव सोनटक्के, वाणी प्रकाश, नई दिल्ली पृ. सं. 11
5. संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, दूसरी आवृति 2015, राधाकृष्ण पेपर बैक्स, दिल्ली,, पृ. 92
6. वही, पृ. 137